वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दलित चिन्तन की सार्थकता एवं उपादेयता

डॉ0 शिवकुमार शर्मा,
अध्यक्ष–हिन्दी विभाग,
माधव स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

कौशल सिंह यादव,
शोध छात्र–हिन्दी,
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

मानवता का दलन ही दलित है, ''किसी भी प्राणी के साथ अमानवीय व्यवहार करना ही उसका दलन है। यह दलन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक किसी भी प्रकार का हो सकता है। भारत में मुख्य दलन आर्थिक व सामाजिक प्रकार का है। खासकर सामाजिक होने का मूल कारण है–वर्ण व्यवस्था। जातियाँ होना बुरी बात नहीं है, विदेशों में भी जातियाँ पायी जाती हैं, कर्मो के आधार पर। हमारे देश में भी प्रारम्भ में जातियाँ कर्मगत थीं। चर्म का काम करने वाला चर्मकार, कुम्भ बनाने वाला कुम्भकार, लोहे का काम करने वाला लोहा, अध्यापन करने वाला अध्यापक था। बाद में जातियाँ रूढ़िगत हो गई।''[1]

तत्तकालीन समय में जो जिस कार्य को करता था, वह उसी जाति का माना जाने लगा। उसके अन्य विकास को रोकने की कोशिश की जाने लगी। उसे घुटन और छटपटाहट के लिए मजबूर किया जाने लगा। उससे कम मजदूरी पर अधिक काम लिया जाने लगा। उसकी आर्थिक स्थिति धीरे–धीरे कमजोर होने लगी, आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण उसका समाज में भी महत्व भी घट गया और समाज में कमजोर होने के कारण वह दलित हो गया तथा शोषक वर्ग का गुलाम हो गया, रोटी, कपड़े के लिए मोहताज हो गया, उससे शिक्षा का अधिकार भी छीन लिया गया और कहा गया कि शास्त्रों में शूद्र तथा स्त्री के लिये शिक्षा वर्जित है तथा शूद्रों और स्त्रियों को शिक्षा से वर्जित रखने का प्रयास किया गया।

दासता से लेकर स्वातंत्र्य काल तक तथा उत्तर काल में देश पर दृष्टिपात करने पर यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि दुबलों के समक्ष दबंगों का दंभ सिर चढ़कर बोला है, उच्च वर्गीय अभिमान आसमान पर आज भी अवस्थित है। सामन्तवाद ने समता के स्थान पर विषमता को ही अधिक वरीयता दी है। सदियाँ गुजरने के बाद भी अतीत से लेकर आज तक समाज से अस्पृश्यता की अवधारणा का अन्त नहीं हुआ।वह आज भी सामाजिक कोढ़ के रूप में विद्यमान है,मानव–संरचना की समता के बावजूद आज भी स्पृश्य और अस्पृश्य के अन्तर की मानविकी अनुमन्य है।

भारतीय गणतंत्र आठवें दशक में प्रवेश कर चुका है पचहत्तर साल के लम्बे अनुभव के बाद भी गणतन्त्र की मशीनरी पूरी तौर पर संविधान की आकांक्षा और अपेक्षा पर खरी नहीं उतरी है। समानता और समता को पोषित करने वाला संविधान राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण उपेक्षित और तिरस्कृत होकर हास्यास्पद प्रतीत हो रहा है। सामाजिक परिवर्तन की आश लगाए गरीब और बेसहारा आज भी उतना दमित और पीड़ित है जितना कि पहले था। संविधान से संरक्षण प्राप्त आरक्षण केवल उन्हें लाभ पहुँचा रहा है जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं भले ही वे सामाजिक स्तर पर वर्ण–व्यवस्था के चलते निम्न वर्ग से आते हों। आर्थिक लाभ लेने के लिए दलित स्वयं अपने वर्ग के गरीब और कमजोर लोगों का शोषण करने में नहीं चूकते। राजनैतिक मंच पर समानता और समता का उद्घोष निरंतर जारी है पर सामाजिक स्तर पर भेदभाव, उत्पीड़न

और शोषण से उत्पन्न असमानता का दौर भी चल रहा है।

उत्तर वैदिक काल और विशेष कर मनुस्मृतिकाल में निर्मित सामाजिक संविधान के संत्रास को आज भी शूद्र या अछूत झेल रहें हैं,देश में समाजवाद और साम्यवाद के प्रयोग की तरह वर्ण–व्यवस्था का प्रयोग भी विफल रहा है। इतिहास गवाह है कि किसी भी शोषण या अत्याचार का अतिरेक संघर्ष का शिलान्यास करता है। अछूत वर्ग सदियों से जन्म मूलक ऊँच–नीच के विषैले प्रभाव से आज भी आहत है। इक्कीसवीं सदी में आज भी समाचार पत्रों की अनेक सुर्खियाँ इस तथ्य की गवाही देती हैं कि दलित को आज भी दलित ही माना जाता है।

अतीत की बात करें तो गुलाम भारत में दलित दोहरी मार के शिकार थे–प्रथम के तहत–उच्च वर्ग उन्हें घृणा की दृष्टि से देखता था और द्वितीय के तहत–गोरे भी उन्हें अपमानित करते थे। इस स्थिति में दलितों को एक गॉड फादर की आवश्यकता थी। कालान्तर में उन्हें महात्मा ज्योतिबॉ फुले और डॉ0 अंबेडकर के रूप में द्वय दलित मसीहा मिले,जिन्होंने दलित आन्दोलन और दलित राजनीति को एक नई दिशा दी। ज्यातिबॉ फुले और उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले ने अपने दृढ़ निश्चय की नाव को अपने पुरुषार्थ की पतवार से दलितों को न केवल दरिद्रता के दरिया से पार लगाया अपितु उनमें स्वाभिमान की भावना को जाग्रत कर उन्हें सांगठनिक शिक्षा प्रदान कर उनमें राजनीतिक चेतना का संचार किया। महात्मा फुले के बाद जिस महान पुरोधा को पूरे देश के दलितों का मसीहा कहा जाता है,उन्हें कौन नहीं जानता? डॉ0 अंबेडकर उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक के उस दौर में जन्मे थे,जब देश गुलामी का दंश झेल रहा था और अछूत वर्ग भी घृणा का जीवन बिता रहे थे। फुले ने दलित चेतना की अलख जगाकर दलित–दिशा की जो दागबेल लगायी थी,उस पर अंबेडकर ने अपनी प्रतिभा,पौरुष और पुरोधत्व के बल पर दलितों के दर्दों की दीवारों को ध्वस्त कर नई इमारत निर्मित कर दी।

प्रखर राष्ट्रवादी विचारक स्वामी विवेकानन्द ने एक बार कहा था कि –''जब शूद्र जागेंगे और उच्च वर्ग द्वारा अपने प्रति किए गए शोषण को समझेंगे तो अपनी फूँक से वे सबको उड़ा देंगे। यह शूद्र वे लोग हैं, जिन्होंने आपको सभ्यता सिखायी और ये ही लोग आपका पतन भी कर सकते हैं।''

डॉ0 अम्बेडकर ने सन् 1949 ई0 में ही घोषणा कर दी थी कि–''दलित व शोषित वर्ग शासित होते–होते थक चुका है, अतः शासन करने के लिए अधीर होता जा रहा है।'' बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर ने भारत को विकसित राष्ट्र की परिधि में लाने के लिए उसके सामाजिक संघठन को चुस्त–दुरस्त करने का प्रयास किया। वे समाज में समता और समानता के स्तर पर ही बन्धुता को स्वीकार करते हैं। समता और समानता के आड़े आने वाली श्रेष्ठता की मानसिकता और पूँजीवाद जो एक वर्ग विशेष की स्वतंत्रता और समानता की मांग को हमेशा से दबाता आ रहा है उससे संघर्ष कर कमजोर और दलित अपना अधिकार और सम्मान प्राप्त कर सकता है। स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की आकांक्षा रखने वाले हर समाज को संघर्ष की प्रेरणा देते हुए डॉ0 अम्बेडकर कहते है–''मेरे विचार से इस देश के दो दुश्मन हैं,ब्राह्मणवाद और पूँजीवाद.....! ब्राह्मणवाद से हमारा आशय स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की भावनाओं के निषेध से है। यद्यपि ब्राह्मण इसके जनक हैं, लेकिन यह ब्राह्मणों तक ही सीमित न होकर सभी जातियों में घुसा है।''[2]

डॉ0 बाबा साहेब भी अम्बेडकर जी का स्पष्ट मानना था कि जाति व वर्ण में ऐसा कुछ नहीं है जो इसे बनाये रखने की वकालत की जाए। जाति व्यवस्था और कुछ नहीं है बल्कि

सीधे–सीधे असमानता व शोषण की प्रतीक है। अम्बेडकर जी कहते हैं कि जाति व्यवस्था जितनी जल्द समाप्त हो जाए भारत की एकता के लिए उतना ही अच्छा है। वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था की जननी है। बिना वर्ण व्यवस्था को समाप्त किए भारत में जाति व्यवस्था समाप्त नहीं हो सकती। क्योंकि जाति को खाद–पानी वर्ण व्यवस्था से ही प्राप्त होती है। अम्बेडकर दलितों के मर्म को समझते थे उन्होंने कहा भी है कि ''अछूत जन्म से अछूत पैदा हुआ है। वह मरेगा भी अछूत की तरह और ब्राह्मण जन्म से ब्राह्मण पैदा हूआ है और मरेगा भी ब्राह्मण की तरह। इसमें योग्यता का कोई स्थान नहीं है।[3]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाज की दोहरी मानसिकता जिसमें एक ओर मत और राजनीति के क्षेत्र में समानता है किन्तु सामाजिक संरचना में असमानता का वातावरण निरन्तर पूँजीवाद की ओर से जारी है। डॉ0 अम्बेडकर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान लागू होने के बाद अपनी आशंका और संवेदना को इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं ''भारतीय समाज में दो बातों का पूर्णतः अभाव है। इनमें से एक समानता। सामाजिक क्षेत्र में भारत का समाज वर्गीकृत असमानता के सिद्धान्त पर आधारित है, जिसका अर्थ है, कुछ लोगों के लिए उत्थान एवं अन्यों की अवनति। आर्थिक क्षेत्र में हम देखते हैं कि समाज में कुछ लोगों के पास अथाह सम्पत्ति है जबकि दूसरी ओर असंख्य लोग घोर दरिद्रता के शिकार है। 26 जनवरी, सन् 1950 ई0 को हम लोग एक विरोधाभासी जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति के क्षेत्र में हमारे बीच समानता होगी। राजनीति में हम एक व्यक्ति एक मत एवं एक मत एक मूल्य के सिद्धान्त को स्वीकृत देंगे। पर अपने सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक संरचना के चलते एक व्यक्ति एक मूल्य के सिद्धान्त को अस्वीकार करना जारी रखेंगे। हम कब तक विरोधाभासी जीवन को जीते रहेंगे, अपने सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में समानता को अस्वीकार करते रहेंगे?''[4]

वर्तमान राजनैतिक परिवेश जिस ढँग से दलित समाज और अस्पृश्यता पर हाय–तौबा मचा रहा है वह स्वयं भी अपने आचरणों और सत्ता लोलुपता के स्वार्थ में शोषण को बढ़ा रहा है। शासक और शासित के मध्य उपेक्षा और अस्पृश्यता की परंपरा का निर्वाह वर्तमान सरकारें भी बखूबी कर रहीं हैं। वर्तमान राजनीति के दंगल में आरक्षण, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और परिवारवाद, क्षेत्रवाद ऐसे ही अनेकों मुद्दे हैं जो कहीं न कहीं से अलगाव, उपेक्षा और शोषण को बढ़ावा दे रहे हैं। उपेक्षा और तिरस्कार की परंपरा को गिरिराज किशोर इस प्रकार स्वीकारते हुए लिखते हैं –''रंगभेद और वर्णभेद ऐसा ही नहीं कि केवल रामायण या महाभारत काल में ही हो। आधुनिकता के इस युग में और सभ्य माने जाने वाले देशों में भी वह मौजूद रहा है। हिटलर इस श्रेष्ठतावाद का सबसे बड़ा प्रतीक है।''[5]

अंग्रेजों के बाद देश स्वतंत्र हुआ और शिक्षा का अंग्रेजीकरण हुआ, जिसमें स्त्री और शूद्रों को भी पढ़ने का अधिकार दिया गया, पर शूद्र सामाजिक दृष्टिकोण से दबाये गये थे, उनके घर भोजन के लाले पड़े थे तथा रूढ़िवादिता एवं कट्टरता से समाज जकड़ा हुआ था। यदि निम्न वर्ग या ऐसे ही कमजोर वर्ग के लड़के विद्यालय भी जाते थे तो उन्हें अलग बैठाया जाता था और जाति–पाँति का भेद–भाव रखा जाता था, ऐसे वर्ग के बच्चों को सामाजिक रूप से इतना प्रताड़ित किया जाता था कि उन्हें लाचार होकर विद्यालय छोड़ना पड़ता था। आज समाज में काफी परिवर्तन आ चुका है, दलित वर्ग के बच्चे विद्यालय जाते हैं, उन्हें पढ़ने का पूरा अधिकार है पर समाज में आज भी उनका निम्न स्थान माना जाता है, तथा समाज उन्हें हीन–भावना का शिकार होने के लिए विवश करता है। 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' (मुजफ्फरनगर) बिहार

द्वारा दिनाँक 03.02.2008 को 'दलित साहित्य के सामाजिक सरोकार' विषय पर संगोष्ठी हुई जिसमें डॉ. हरिनारायण ठाकुर ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा, ''तन की छुआछूत तो बहुत हद तक मिट चुकी है, पर मन की छुआछूत अभी बाकी है, पूँजीवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद, साम्यवाद, गाँधीवाद आदि सभी वाद यहाँ आकर ब्राह्मणवाद में ही विलीन हो जाते हैं। इसलिए दलित प्रश्न केवल दलितों का प्रश्न नहीं है। यह नया अध्ययन सभी पुराने पड़े मूल्य–मान्यताओं और सिद्धान्तों की एक नयी व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसलिए यह शत–प्रतिशत मानवीय सरोकारों का साहित्य है दलित–विमर्श के द्वारा साहित्य और संस्कृति के अनेक पुराने पड़े प्रतिमान एक बार फिर से जीवित और जीवन्त हो उठे हैं, इसलिए इस पर समाज में खुली बहस होनी चाहिए।''[6]

आज चाहे व्यक्ति पैसे से कितना ही बड़ा क्यों न हो जाए। समाज में छुआछूत का विष अभी भी फैला हुआ है,हॉलाकि इसे मिटाने के सार्थक प्रयास हो रहे हैं, पर जो लोग प्रयास कर रहे हैं, उनमें कुछ शोषित वर्ग के हैं, जो तन, मन, तथा धन से लगे हुए हैं, पर कुछ शोषक वर्ग के लोग भी है, जिनमें से कुछ छोड़कर ज्यादातर लोग बुद्धि और तन से तो कार्य करते हैं, पर मन से नहीं। जब तक मन से कार्य नहीं करेंगे, तब तक इस समाज से छुआछूत की भावना दूर नहीं हो सकती है। छुआछूत की भावना इतनी प्रबल है कि इसकी गन्ध हमेशा आती रहती है। और कुछ तो अपवित्र होने पर पवित्र हो जाता है पर दलित किसी भी समय, किसी भी ढंग से पवित्र नहीं हो पाता है, ''अछूतों का अस्तित्व 400 ई. के भी काफी बाद में हुआ हाँलांकि अपवित्र की मान्यता काफी पहले से थी। पवित्रता थोड़े समय तक रहती थी और जन्म, मृत्यु, मासिक धर्म आदि के अवसर पर ही पैदा होती थी, अपवित्रता का समय बीत जाने पर या पवित्रता का संस्कार कर देने पर अपवित्रता नष्ट हो जाती थी और वह व्यक्ति फिर पवित्र तथा समाज में मिलने योग्य हो जाता था किन्तु अछूतपन इससे भिन्न है, यह स्थायी है, जो हिन्दू उनका स्पर्श करता है, वह तो स्नान आदि से पवित्र हो जाता है, किन्तु ऐसी कोई चीज नहीं, जो अछूत को पत्रि बना सके, वे अपवित्र ही पैदा होते हैं, जन्म भर अपवित्र ही बने रहते हैं। अपवित्र ही मर जाते हैं और जिन बच्चों को वे जन्म देते हैं, वे बच्चे भी अपवित्र का टीका माथे पर लगाये ही जन्म ग्रहण करते हैं।''[7] अपवित्रता उनका आनुवांशिक लक्षण माना जाता है, जिसके जिम्मेदार समीप के मुट्ठी भर लोग हैं, जो अपने अस्तित्व के लिये दूसरों का अस्तित्व मिटाने पर तुले रहते हैं।

आज शासन और सत्ता में बैठे लोग भले ही राजनीति के मंच से सामाजिक समानता एवं दलित हित की बात कर रहे हों किन्तु उनके व्यवहार में जातिवाद, परिवारवाद, क्षेत्रवाद का प्रतिशत अधिक है। सत्ता में बैठकर जातीय उन्मूलन एवं दलित हित की घोषणा करने वाले भाषणों से समाज एक नहीं हो जाता, उसके लिए व्यक्तिगत आचरणों और व्यवहारों में समाज चिन्तन आवश्यक है। आरक्षण या अन्य सरकारी सुविधाएँ (जिनमें राजनैतिक ठेकेदारों का प्रतिशत टेबिल के नीचे से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित है) भी अन्तिम पायदान पर बैठे व्यक्ति को लाभ नहीं पहुँचा पा रहा है। जनहित के मामलों में भी शासन और प्रशासन खर्च के नाम पर रिश्वत लेने या माँगने में नहीं हिचकता। व्यक्ति मजबूर और निराश होकर इस परंपरा का निर्वाह इसलिए कर रहा है कि उसके पास शासन और प्रशासन से टकराने का साहस नहीं है। व्यक्तिगत लाभ और व्यक्तिगत स्वार्थ मनुष्य की मानसिकता पर निरन्तर हावी होता जा रहा है।

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रचनाकर्म : सम्पादक डॉ0 माया प्रकाश पाण्डेय, जुलाई–सितम्बर–2004, पृ. 21

2. गेल ओमवेटः अम्बेडकर एण्ड आफ्टर, द दलित मूवमेण्ट इन इण्डिया–सं0 घनश्याम शाहा, सेज पब्लिकेशन 2002
3. भारतीय सामाजिक विचारक– दोषी एस0 एल0,रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर,2009, पृ0 171
4. भीमराव अम्बेडकरः संविधान सभा में दिया गया भाषण, नवम्बर, 1949, सामाजिक क्रान्ति के दस्तावेज–2, सं0 शम्भुनाथ, वाणी प्रकाशन 2004
5. गिरिराजकिशोर, दलित विमर्शः संदर्भ गाँधी, पृ0सं0–12
6. हंस : सम्पादक राजेन्द्र यादव, अप्रैल–2008, पृ. 85
7. रचनाकर्म : सम्पादक डॉ0 माया प्रकाश पाण्डेय, अप्रैल–जून–2005, पृ. 56